तुलसी दास के काव्य में व्यक्त भक्ति में सेवक–सेव्य भाव की प्रगाढ़ता

संजीव कुमार*

पुत्र श्री नफे सिंह
गांव बडसीकरी खुर्द,तहसील कलायत,
जिला कैथल (हरियाणा), भारत

Email ID: *smdhull91@gmail.com*

Accepted: 10.12.2022 **Published**: 01.01.2023

मुख्य शब्दः भक्ति का मूल स्त्रोत, एकेश्वरवाद, ब्रह्मचिन्तन, वैदिक, क्षणभंगुरता।

शोध आलेख सार

भारत में भक्ति का उदय कब, कहां और किन परिस्थितियों में हुआ– इस बारे में कोई निश्चयात्मक मत प्रस्तुत नहीं किया जा सका है, पर इतना तथ्य सर्वमान्य है कि जिस प्रकार कर्म और ज्ञान का उद्गम स्थ वेद हैं, उसी प्रकार भक्ति का मूल स्त्रोत भी वेदों में ही उपलब्ध होता है।[1] वेदों के सम्यक् अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत होकर वैदिक ऋषियों ने उनकी विभिन्न देवी–देवताओं के रूप में उपासना प्रारम्भ की। स्पष्टतः यह भक्ति सकाम भक्ति थी। देवी–देवताओं से बदले में सुख, ऐश्वर्य, धन, धान्य आदि की मांग की जाती थी। यद्यपि इन देवी–देवताओं के सूर्य, इन्द्र, वरूण आदि विभिन्न नाम थे, पर फिर भी ये सब किसी एक ही शक्ति के प्रतीक थे। अतः उस युग की भक्ति में एकेश्वरवाद की प्रधानता दिखायी देती है। ऋग्वेद में आता है– ''एक सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।''[2] और ''कवयो वचोभिरेकं सन्त बहुधा कल्पयन्ति।''[3] विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुति करते हुए वैदिक ऋषि देवताओं के साथ प्रेमपूर्ण सम्बंध स्थापित करते हैं– ''अदिति माता स पिता'' [4] और ''द्यौ में पिता'' [5] आदि। इस यह भी सिद्ध होता है कि उस युग की भक्ति में राग–तत्त्व विद्यमान था।

पहचान निशान

**Corresponding Author*

© IJRTS Takshila Foundation, Sanjeev Kumar, All Rights Reserved.

चारों ओर फैले हुए सृष्टि के सौन्दर्य से प्रभावित होकर भक्त उस सौन्दर्य के स्त्रोत प्रभु की ओर आकृष्ट हुए। सौन्दर्य के माध्यम से उनकी दृष्टि सौन्दर्य के नियन्ता ईश्वर की ओर गयी और वह इस समस्त सौन्दर्य के पीछे छिपे उस परम सुन्दर की उपासना में लीन हुए। उपनिषदों का सारा दर्शन इसी ब्रह्म की ओर उनमुख है। वहां ब्रह्मचिन्तन करते हुए त्रषि की दृष्टि विशेष रूप से आत्मोन्नयन की ओर आ रही है। आत्मा के स्वरूप, निर्गुण–ब्रह्म के स्वरूप, उसकी सर्वभूतात्मकता और सांसारिक सुखों की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता आदि का उल्लेख होने से उपनिषदों में ज्ञान की प्रधानता है। भक्त समाधिस्थ होकर आत्मचिन्तन करता हुआ ब्रह्म की साक्षात् अनुभूति करके आत्म–ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। इसमें पहले भाव की और फिर प्रेम की प्रधानता दिखायी देती है। मुण्डकोपनिषद् [6], श्वेताश्वतर उपनिषद् [7] और छान्दोग्य उपनिषद् [6] में भक्ति के तत्त्वों का विवेचन मिलता है, जिसके सम्यक् अध्ययन से यह पता चलता है कि इनकी भक्ति अन्तर्मुखी और रहस्यात्मक है। यह निष्कामता की ओर उनमुख है। इसमें हमें भक्ति का सूक्ष्म और परिष्कृत रूप उपलब्ध होता है।

श्रीमद्–भगवद्गीता के 12 वें अध्याय में श्रीकृष्ण ने स्वयं भक्ति के लक्षण बताये हैं। अन्यत्र भी भक्ति के तत्त्वों का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। [7] भक्ति के स्वरूप की व्याख्या करते हुए लोक संग्रह का प्रवर्तन करने वाले वैष्णव भाव को ही अधिक महत्व दिया गया है।

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यह्म।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।''

प्रभु की महानता के प्रति आकर्षित होकर एकनिष्ठ भाव से निष्काम प्रेम करता हुआ भक्त प्रभु के नाम स्मरण और नाम–जप के द्वारा आराध्य का समन्निध्य प्राप्त करता है। महर्षि नारद ने अखण्ड भजन को भक्ति की प्राप्ति का महान साधन माना है। [8] श्रीमद्–भागवत में भगवान के नाम, गुण, कर्म, लीला आदि के कथन एवं श्रवण को भक्ति की प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है। कलियुग में तो नाम–जप के अलावा भक्ति की प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है। नाम का जप करने से भगवान के अतिरिक्त अन्य कुछ दिखायी ही नहीं देता।

व्यष्टिभूमि पर जो सगुण ब्रह्म है, समष्टि भूमि पर वही निर्गुण ब्रह्म है। व्यष्टि भूमि भक्ति की भूमि है और समष्टि भूमि ज्ञान की भूमि है। नाम निर्गुण और सगुण के बीच सेतु है, क्योंकि इसमें उभयात्मकता है। अतः निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपें में भक्ति करने वाले भक्तों ने नाम जप की महत्ता स्वीकार की है। तुलसी ने मानस में नाम की महिमा गायीः

''भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।'' [9] तथा
''पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भव सागर तरहीं।।''

कलियुग में भवसागर से पार उतरने के लिये नाम का ही आधार है। अतः नाम–जप सर्वश्रेष्ठ साधन है। नाम राम से भी बड़ा है :

''कहउं नाम बड़ राम ते''

अतः तुलसी काव्य में सर्वत्र नाम–जप पर बल दिया गया है। [10]

सन्तों और सज्जनों की संगति में रहना ही सत्संगति है। भक्ति के लिए सत्संगति को प्रायःसभी आचार्यों ने साधन रूप में स्वीकार किया है। सत्संग से विषय–वासनाओं के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है। मनुष्य संसार की निःसारता को समझता हुआ सहज और सरल जीवन के प्रति आकर्षित होता है। इस मन शुद्ध होता है और भगवान के चरणों में उसकी निष्ठा एवं प्रेम बढ़ता है।

निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपें में भक्ति करने वाले भक्तों ने साधन रूप में सत्संगति की महत्ता को स्वीकार किया है। कबीर न साधुजन की संगति की प्रशंसा की है। [58] तुलसी ने स्थान–स्थान पर स्वीकार किया है कि सज्जनों और सन्तों की संगति के बिना ईश्वर की प्राप्ति हो ही नहीं सकती :

''बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मेह गए बिन्दु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।।'' [10]

रामकथा के अधिकारी वे ही व्यक्ति माने गये हैं, जो सन्तों की संगति में रहते हैः

'' राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी।।''[11]

तुलसी मूलतः भक्त थे। अतः उनके काव्य में सर्वत्र भक्ति भाव की प्रधानता है।उन्होंने काव्य के लिये काव्य रचना नहीं की। कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था, अपितु भक्ति के प्रचार के लिये और भक्ति के सन्देश को जन–जन तक पहुंचाने के लिये ही काव्य–रचना की थी। काव्य वस्तुतः उनकी भक्ति के प्रचार का माध्यम है। जिस प्रकार पुराणकारों ने गाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक चिन्तन को रोचकता प्रदान की है, उसी प्रकार तुलसी ने अपनी धर्म और दर्शन समन्वित भक्ति को काव्य के माध्यम से अत्यन्त सफलता पूर्वक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी भक्ति पूर्णतः शास्त्रनुमोदित और परम्परानुसारी है। वह एक ओर तो नानापुराणनिगमासम्मत है और दूसरी ओर पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परागत मान्यताओं और वैष्णव धर्म के लक्षणों के अनुरूप है। इसमें अन्तः साधना अर्थात् दार्शनिक तत्त्व वेदों और उपनिषदों से आया है, उपासना एवं विधि–विधान अर्थात धर्मतत्त्व समृतियों, पुराणों और वैष्णव संहिताओं से आया है, सदाचारी आदर्श नायक की प्रेरणा रामायण और महीाारत जैसे काव्य–ग्रन्थों से ली गयी है। इस प्रकार तुलसी की भक्ति में अपने से पूर्ववर्ती प्रायः सभी मूलभूत तत्त्वों एवं सिद्धान्तों का समाहार हो गया है।

तुलसीआदर्श भक्त हैं। वे अपने आराध्य राम के प्रति दास्य भाव की भक्ति रखते हुए पूर्ण प्रेम और विश्वास के साथ आत्मसमर्पण करते हैं :

''तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौंप्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।

मो समां आरत नहिं आरतिहर तोसो।।''[12]

विनयपत्रिका में वे प्रत्येक देवता से राम भक्ति की याचना करते हैं। जनम–जनम रति पद' ही उनका काम्य है। भगवद्–भक्ति को परम प्रकाश कहकर उसी की दीप्ति को तुलसी ने अपना चरम उद्देश्य समझा है। मानस में ज्ञानी, वैरागी और कर्मनिष्ठ सभी प्रकार के भक्त अन्त में राम भक्ति की ही याचना करते हैं।

भगवान किसी अन्य नाते को न मान कर केवल मात्र भक्ति का नाता मानते हैं– ''मानौं एक भगति कर नाता।'' और इसी एक नाते के आधार पर निम्नतम जातियां उच्चतम स्थान–भगवत्कृपा–प्राप्त करती हैं। यथा–कोल, भील, निषाद, बानर, रीछ आदि भक्ति के नाते से ही राम को प्रिय है। जिसका राम से प्रेम नहीं है, उस निकटतम सम्बंधी और सुहृद को भीउन्होंने छोड़ने का आदेश दिया है :

''जाके प्रिय न राम वैदेही।

तजिए ताहि कोटि वैरी सम जदपि परम सनेही।।'' [13]

भक्त का भगवान के प्रति समर्पण केवल प्रेम भाव के कारण ही नहीं है, अपितु भगवद्विरोध से भी भक्त भगवान का सानिध्य प्राप्त करता है। परिवारजनों, वानरों और रीछों आदि ने ''राग'' के मार्ग से तन्मयता प्राप्त की, तो रावणदि ने द्वेष मार्ग से। तुलसी ने रावण के वैर भाव को भी स्मरण का अंग माना है और इस प्रकार उसे भी भगवत्कृपा का अधिकारी बना दिया है– ''तुलसी अपने राम की रीझ भजौ कै खीज।''

आराध्य राम की अनन्य–भक्ति की आकांक्षा करने वाले तुलसी के लिये उनके सम्पर्क में आने वाली सभी वस्तुएं उपास्य बन गयी है। उनका स्व और पर, जड़ और चेतन का भेद मिट गया है। प्रकृति, परिवार, वर्ण, आश्रम, मित्र, सम्बंधी–सभी के साथ उनका केवल मात्र भक्ति का नाता रह गया है। सारा संसार आराध्य के स्वरूप और सौंदर्यराशि का अनुभव करता हुआ समस्त संसार को ''सिया राममय'' जानकर श्रद्धा और प्रेम के साथ नमन करता है :

''सिया राममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।'' [14]

आराध्य के स्वरूप पर मुग्ध होना ही भक्ति का प्राण है। भक्त का हृदय आराध्य के प्रति प्रेम से लबालब भर जाता है। अनुभूति की तीव्रता में उसके हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति स्वतः ही होने लगती है। हृदय का प्रेम–रस–''आनन्द–उछाल''–''कविता–सरिता के रूप में बह निकलता है। क्रोचे ने इसी को स्वयंप्रकाश्य ज्ञान'' और ''सहज–अभिव्यक्ति'' कहा है।

प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठा को व्यक्त करने के लिये तुलसी साहित्य में ''निष्कामता'' को बार–बार दोहराया गया है। उनकी इस निष्काम भक्ति का आदर्श चातक है। [75] बादल के प्रति चातक की अनन्य आसक्ति का वर्णन करते हुएउन्होंने सच्ची भक्ति के स्वरूप के सुन्दरतम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं :

''उपलि बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।

चितव कि चातक मेघ तजि कबहुं दूसरी ओर।।'' [15] और–

''जलदु जनमि भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारड।।

चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भांति भलाई।।

कनकहिं बान चढ़इ जिमिदाहे। बढ़ें प्रेम सब भांति भलाई।।

कनकहिं बान चढ़इ जिमिदाहे। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें।।'' [16]

भरत भक्तों के लिए आदर्श है। उनकी राम के प्रति भक्ति अनन्य–प्रीति और निष्कामता से युक्त है। स्पष्ट है कि तुलसी की इस अनन्य और निष्काम भक्ति का अनन्य–प्रीति और निष्कामता से युक्त है। तुलसी की भक्ति की भांति ही उनके काव्य का भी अन्य कोई ध्येय नहीं। भक्ति ही उनका काम्य है। अपने काव्यय के द्वारा वे लोक के समक्ष आदर्श भक्ति की ही प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। उनकी भक्ति का एकनिष्ठ प्रेम–भाव ही उनके काव्य की प्रेरणा है और अपने इस रूप में उनकी भक्ति काव्य में उनका ''स्वान्तर–सुख'' और काव्य–सिद्धान्त के रूप में ''कला–कला के लिये'' बनकर प्रकट हुई है।

तुलसी को अपने लिये योग, ज्ञान, ध्यान, वैराग्य, तप, तीर्थाटन कर्मकाण्ड आदि सभी असाध्य प्रतीत होते हैं, इसीलिए उन्होंने राम की भक्ति के प्रति अपनी एकनिष्ठा व्यक्त की है और इसीलिये राम की भक्ति को सब साधनों का सुन्दर फल माना है। राम–भक्ति ही उनके लिये ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसके आश्रय में पहुँच कर उन्हें धन, धाम, स्वर्ग, नरक–किसी की भी चिन्ता नहीं रह जाती। अतः उन्हें राम का गुलाम'' बन कर जीना ही अच्छा लगता है। भगवान राम को भी भक्ति प्यारी है, अतः नर्तकी माया उस पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा पाती

''पुनि रघुबीरसिंह भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी विचारी।।''

उन्होंने ज्ञान को पुरूष और भक्ति को स्त्री माना है और कहा है कि नर्तकी माया पर मानवीय भक्ति का मोहित होना असम्भव है–''मोह न नारि नारि के रूप।''

संसार में रहता हुआ कोई भी प्राणी कर्मों से पृथक नहीं रह सकता। अतः कर्म करते हुए ईश्वरोन्मुख बने रहना ही भक्ति है। सांसारिक कर्तव्यों का पालन करते हुए ईश्वरोन्मुख बने रहने से भक्ति में दृढ़ता आती है। तुलसी के अनुसार मनुष्य जीवन में भक्ति का वही महत्व है जो भोजन में नमक का :''भगति हीन गुन सुख सब ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।।''

दुःखों को दूर करने के लिये एकमात्र औषधि राम–भक्ति ही है जो दैहिक, दैविक और भौतिक–सभी प्रकार के तापों का शमन करने में समर्थ है। डॉ0 रामकुमार वर्मा के अनुसार ''तुलसी ने भक्ति को जीवन के मानसिक रोगों की अमोघ औषधि मानकर उसका व्यावहारिक एवं सुगम रूप उपस्थित किया है।' अतः उनकी भक्ति बनवासियों के लिये ही नहीं, अपितु समाज–सेवियों और सद्गृहस्थों के लिये भी प्रयोजनीय एवं महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार तुलसी ने सामान्य जन के लिये भक्ति की महत्ता एवं श्रेष्ठता प्रतिपादित की। ''अपने युग के समस्त संशयों और तर्कों को दूर करने एवं दर्शन और धर्म को जीवन में उतारने का एकमात्र अवलम्बन तुलसीदास ने भक्ति को ही माना।'' जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भक्ति को ही स्वीकार करते हुएउन्होंने अपने काव्य–ग्रन्थों में अपने उपास्य राम की चरित गाथा को इस रूप में प्रस्तुत किया कि उनकी भक्ति का व्यावहारिक रूप पूर्णतः समुद्घाटित हो गया।

प्रायः सभी सम्प्रदायों में भक्तिको आत्म–परिष्कार का साधन माना गया है। प्रेम और प्रतीति पूर्वक ईश्वर की आराधना करने वाला भक्त आत्म–विश्लेषण करता हुआ सर्वात्मना आराध्य के प्रति समर्पित हो जाता है। पूर्ण समर्पण की स्थिति में उसका किसी के भी प्रति राग–द्वेष नहीं रह जाता, क्योंकिवह पूर्णतः आराध्यमय हो जाता है। तल्लीनता और तदाकारता की यह स्थिति हमें कबीर, सुर, तुलसी आदि सभी भक्त कवियों में दृष्टिगोचर होती है।

तुलसी–साहित्य में उनकी भक्तिआत्म–परिष्कार के साधन रूप में वर्णित है। राम–प्रेम और राम–भक्ति के अभाव में ह्रदय की पूर्ण शुद्धि नहीं हो सकती :

'' राम–चरन–अनुरागनीर बिनु मल अति नास न पावै।'' और–

''प्रेम–भगति जल बिनु रघुराई। अभियअंतर मल कबहुँन जाई।।' आदि

आत्मशान्ति भी राम–भक्त के द्वारा ही सम्भव है। तुलसी को राम की भक्ति करके और फिर उस भक्ति को रामचरितमानस के रूप में अभिव्यक्त करके ही ''स्वान्त–सुख'' की प्राप्ति हुई थी और उनके ''अन्तस्तम'' का अपसारण हुआ था। राम की भक्ति करने से सभी ह्रदयस्थ भाव एकोन्मुख–रामोन्मुख हो जाते हैं। अतः मोह, अंहकार, ममत्व आदि भाव स्वयं ही छूट जाते हैं, और ईश्वर से तदाकारता हो जाने के कारण ह्रदय में केवल राम के प्रति प्रीति ही शेष रह जाती है। तुलसी की अपने राम से ऐसी तदाकारता हो गई थी कि भावानुभूति के आवेग में उनके ह्रदय से जो काव्य–सरिता निःसृत हुई, उसने रामकथा सुनने वालों और पाठ करने वालों–दोनों को भक्ति रस से सराबोर कर दिया।

तुलसी अपने आराध्य राम के चरित एवं लीला के गान के द्वारा संसार में संवेदना, आदर्श समाज, आदर्श साहित्य और आदर्श राज्य की स्थापना करना चाहते थे। संसार के प्रत्येक प्राणी को मानवता की पराकाष्ठा पर पहुंचाना उनका स्वप्न था। अतः उनकी भक्ति में वे सभी आदर्श सूत्र में मोतियों की भांति पिरोये हुए हैं, जो मानवता को उत्थान की ओर ले जाते हैं और मानव–मात्र का कल्याण करने वाले होते हैं। उनका काव्य जीवन का निर्माण करने की प्रेरणा देने वाले उन आदर्शों से युक्त है, जिनकी नींव में नैतिकता है। उनके पात्र दैवीयगुणसम्पत्–सम्पन्न हैं और उन नैतिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले हैं, जो मनुष्य की अन्तवृत्तियों का उत्कर्ष कराने के साथ–साथ सार्वभौमिक मानवता का कल्याण करने वाले होते हैं। तुलसी के अनुसार नैतिकता की कसौटी है–परहित एवं त्याग। इन्हीं से स्वान्तः सुख

मिलता है और इन्हीं से हृदय के तम का उपशमन होता है। उनका ''जो मन भज्यो चहे हरि सुरतरू'' [91] पद इस बात का प्रमाण है कि उनकी भक्ति नीति–सम्बंधी सिद्धान्तों से युक्त थी।

स्पष्ट है कि उनकी भक्ति सामाजिक धरातल पर अवस्थित है। भक्त के जीवन, व्यवहारों, संस्कारों और कार्यों के माध्यम से समाज उनकी भक्ति में अनिवार्य रूप से सम्मिलित हो जाता है। ईश्वर के प्रति परानुक्ति की भावना उसे मानव–मात्र की चिरमंगल–कामना की ओर प्रेरित करती है।

गोस्वामी जी के काव्य में आये हुए कलियुग के वर्णनों से स्पष्ट होता है कि उनके युग में लोक–जीवन अत्यन्त दयनीय अवस्था में था और ''प्रकृति की सहज वासनाओं का दास बना हुआ मानव प्रकृति के प्रधान अर्थात् आध्यात्मिक और नैतिक अंगों की अवहेलना करके पशुता के स्तर तक पहुंचा हुआ अहितकारी परिणामों को भोग रहा था।' इसी के उननयन के लियेउन्होंने मानस के पात्रों का आदर्श जनता के सामने रखकर आदर्श परिवार, आदर्श समाज और आदर्श राज्य का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत किया। उनकी भक्ति में जहां एक ओर व्यक्तिगत साधना द्वारा आत्मकल्याण होता है, वहीं दूसरी ओ लोकसाधना द्वारा लोककल्याण भी होता है। लोक की रक्षा करने वाला राम का रूप उन्हें वैसा ही प्रिय है, जैसा चातक को लोक–सुखदायी मेघ का रूप। इस प्रकार उनकी भक्ति व्यक्तिनिष्ठ होने के साथ–साथ समष्टिनिष्ठ भी है।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उनकी भक्ति लौकिक कर्मों से विमुख करने वाली नहीं है, अपितु संसार में रहते हुए सांसारिक कर्मों और कर्तव्यों को करने की प्रेरणा देने वाली है। भक्त–शिरोमणि भरत और विदेहराज जनक–दोनों के जीवन में राम के प्रति प्रगाढ़, एकनिष्ठ और निष्काम प्रेम के साथ–साथ पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने की भावना का भी पूर्ण सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है, जो इस बात का परिचायक है कि कर्तव्य से विमुख करने वाली भक्ति के वे पक्षपाती नहीं थे। ''जिस भक्ति पद्धति में लोक–धर्म की उपेक्षा हो, जिसके भीतर समाज के श्रद्धापात्रों के प्रति द्वेष छिपा हो, उसकी निदा करने में भीउन्होंने संकोच नहीं किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 भामह, काव्यालड्कार, 1 / 17.
2 विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 3 / 30.
3 रामरतन भटनागर, तुलसीदास एक अध्ययन, पृ0 44.
4 भूमिका, मानस का कथाशिल्प, श्रीधर सिंह, पृ0 3.
5 राम काव्यधारा–अनुसंधान एवं अनुचिंतन, पृ0 194.
6 प्रेमस्वरूप, हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना, पृ0 365.
7 रामचरितमानस, 1 / 7 (ग).
8 रामचरितमानस, 1 / 14 / 9.
9 रामचरितमानस, 1 / 14.
10 हरिश्चन्द्र वर्मा. राम0 में मान व महिमा (लेख), संभावना, तु0 वि0, पृ0 103.
11 रामचरितमानस–साहित्यिक मूल्यांकन, सं0 सुधाकर पाण्डेय, पृ0 66.
12 राम प्रताप अग्रवाल, बाल्मीकि और तुलसी–साहित्यिक मूल्यांकन, पृ0 409–410.
13 रामचरितमानस, 7 / 115 / 11.

14 रामचरितमानस, 7/115/13.
15 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ0 87.
16 रामचरितमानस, 1/105/5–6.